# "सरोज-स्मृति की विशेषता"

'सरोज-स्मृति' विलक्षण विलाप की मनः स्थिति में लिखी गई है इसलिए इसके विलाप में बिखराव है। एक भाव से अचानक दूसरा भाव सामने आ जाता है। 'सरोज-स्मृति' में कई अंश जैसे निराला का साहित्य-संग्राम, सरोज का बचपन, रचना लौटने पर खिन्न मनोदशा, सरोज का कुण्डली फाड़ना, कान्यकुब्ज कुलांगारों पर चोट, सरोज की शादी, दिवंगत कन्या का तर्पण आदि एक-दूसरे के अनुस्यूत नहीं हैं। उनका आंतरिक गठन ढीला है और यही इस कविता की विशेषता भी है, क्योंकि विलाप की स्थिति में कवि कोई सुदृढ़ प्रणाली नहीं बना सकता अगर बना भी ले तो उसका निर्वाह वह नहीं कर सकता। इस कविता में यही हुआ है

आरंभ में अनुभूति को एक भव्य रूपक में बाँधकर महाकाव्य की-सी ऊँचाई पर ले जाने की चेष्टा की गई है। संकेत किया गया है कि सरोज के जीवन के अट्ठारह वर्ष 'गीता' के अट्ठारह अध्याय हैं जिसे पूरा करने के बाद साधारण मृत्यु नहीं 'अमर शाश्वत विराम' मिलता है। जीवन एक अर्थ मुख सागर माना गया है और मृत्यु को 'नौका' जो उस जीवन के पार 'पूर्ण आलोक वरण' तक ले जाती है। निश्चय ही यह एक त्रैजिक स्थिति है जिसमें एक तरुणी अपनी संभावनाओं को चरितार्थ किए बिना ही 'जीवन सिन्धु तरण' कर रही है, एक महाकाव्य की उदात्त ऊँचाई है। कम कवित लंबी कविता को महाकाव्यात्मक आयाम दे जाती है।

किन्तु कुछ 'सरोज-स्मृति' उनमें से एक है। किन्तु कुछ ही क्षण बाद कवि की विकलता उस आदर्श का निर्माण नहीं करने देती। वह उन्हें यथार्थ की कोठरी से धरती पर लाकर पटक देती है-

"धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका!
जाना तो ~~अर्थ~~ अर्थागमोपाय,
पर रहा सदा संकुचित-काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर।"

सरोज के शैशव के चित्र के साथ 'निरानन्द' संपादक की 'गुण ग्राहकता' का वर्णन आता है जिसमें तत्कालीन सुविख्यात संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रति आक्रोश देखा जा सकता है। इस व्यक्तिगत लेखकीय प्रसंग का संबंध भी प्रकारान्तर से सरोज की मृत्यु से जुड़ा है। 'दिशाकाश' देखने में जहाँ दुःख की व्यंजना है वहाँ उसके विस्तार में यह भी छिपा है कि इतना दुःखी होने का कारण नहीं है- इतना बड़ा संसार फैला हुआ है, कोई तो उनकी रचनाओं को समझेगा ही। 'पास ही नोचता हुआ घास' एक मौलिक बिम्ब है जिसमें अपनी पीड़ा के साथ मन्दमति संपादक के प्रति आक्रोश भी व्यंजित है। 'अज्ञात फेंकता इधर-उधर' में मन की निरुद्देश्यता है- मानो उन संपादकों पर भाव की अंजलि चढ़ा रहे हों। व्यंग्य द्रष्टव्य है-

"अंजलि फूलों की नहीं धारों की है।"

कवि शोक को गहरा करने के लिए अपने वैवाहिक जीवन की चर्चा करते हैं। यह वर्णन की विलोम पद्धति है, इसमें पुत्री के बालिका रूप के वर्णन के साथ एकाएक 'धीरे-धीरे फिर बढ़ा चरण' के द्वारा नव युवती रूप का ऐसा सुंदर निर्लिप्त वर्णन करते हैं जो संसार के किसी काव्य में मिलना मुश्किल है। यहाँ कवि और पिता एक-दूसरे की जगह ले लेते हैं। पिता सरोज के यौवन का चित्रण न कर पाता, पर कवि ने किया -

"धीरे-धीरे, फिर बढ़ा चरण,
बाल्य की केलियों का प्रांगण
कर पार, कुंज-तारुण्य सुघर
आई, लावण्य-भार थर-थर
काँपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकौश नव वीणा पर।"

'प्रांगण' में खुलेपन का बोध है, कोई बंधन नहीं। बाल्यकाल में वह स्वच्छंद होकर केलि करती है और युवावस्था आते ही ये फैलाव संगठित हो जाता है। आंतरिक और बाह्य बंधन उसे घेर लेते हैं। 'कुंज' से घनत्व का बोध होता है, इससे हरियाली, शीतलता का भाव जुड़ा हुआ है। 'कुंज' की सुडौलता उसके शरीर में है और गंभीरता अंदर है। लावण्य-भार से कोमलता काँप उठती है। इसके काँपने का मतलब है कि आभा रह-रहकर

टिपटिप आती है, एक गंभीरता व्याप्त है। 'मालकौश' का स्वर जैसे देव यष्टि में यौवन गुंजायमान हो रहा है। सरोज का सौन्दर्य प्रकाश बिम्ब या दृश्य बिम्ब है और उसकी उपमा ध्वनि बिम्ब से दी गई है। 'मालकौश' एक मधुर एवं गंभीर राग है, जो रात्रि के तीसरे पहर गाया जाता है। इसमें कोमल स्वर रहते हैं। इस राग से सरोज के लावण्य की उपमा देने से उसकी गंभीरता, स्वभाव एवं वाणी की मृदुलता अभिलक्षित होती है। रूप-छवि की अधिक गहराई में जाकर कवि कहते हैं-

'नैश स्वप्न ज्यों तू मन्द-मन्द
फूटी ऊषा जागरण छन्द
काँपी भर निज आलोक-भार
काँपा वन, काँपा दिक् प्रसार
परिचय-परिचय पर खिला सकल-
नभ, पृथ्वी, द्रुम, कलि, किसलय दल।"

यानी बाल्यावस्था में तू रात्रि के स्वप्न के समान थी। स्वप्न में अपूरित इच्छाएँ प्रकट होती हैं, उसका स्वच्छंद प्रसार होता है, उसमें तर्क नहीं रहता, जिम्मेदारियों से मुक्त रहती है। नैश-स्वप्न ऊषा के कर्ममय जीवन में संक्रमित होता है। युवावस्था ऊषा की तरह फूटी। ऊषा स्फूर्ति, प्रेरणा, ताजगी और उत्साह का प्रतीक है। युवावस्था जागरण छंद यानी उद्‌बोधन गीत की तरह है, जिसमें आंतरिक वृत्तियाँ जाग जाती हैं। नए मनोभाव पैदा होते हैं और

इसके साथ संपूर्ण सृष्टि का नया परिचय मिलने लगता है। वह नए सिरे से श्रेष्ठ सृष्टि के साथ जुड़ाव महसूस करती है। भावनाओं की जो तरंगें मन में उठने लगी थीं वही दिक् प्रसार में भी दिखाई पड़ने लगीं। 'प्रसाद' ने भी 'कामायनी' के 'लज्जा-सर्ग' में सौन्दर्य का ऐसा चित्रण किया है-

" उज्ज्वल वरदान चेतना का,
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं।
जिसमें अनंत अभिलाषाओं के
सपने पलते रहते हैं।"

'आलोक भार' का तात्पर्य सौन्दर्य-पुंज से है। वह आंतरिक तेज, ओजस्विता आदि को अपने अंदर संजोकर काँपी। नए ढंग से सक्रियता आई। 'कम्प' सात्विक अनुभव है। इसमें श्रृंगारिक भावनाओं के उदय का संकेत है। इस सौन्दर्यांकन में शारीरिक विकास के साथ भाव-जगत का परिवर्तन भी निराला ने दिखाया है-

" क्या दृष्टि! अतल की सिक्त-धार
ज्यों भोगावती उठी अपार
उमड़ता ऊर्ध्व को कल सलील
जल टलमल करता नील-नील
पर बँधा देह के दिव्य बाँध
छलकता दृगों से साथ-साथ।"

'क्या दृष्टि' के बाद विस्मयादि बोधक चिह्न उनके विलक्षण होने का द्योतक है। इस

विस्मय में केवल सौन्दर्य को जानने की आकांक्षा ही नहीं, सारी करुणा है, व्यथा है, क्योंकि उसकी सिर्फ याद भर है, वह तो नहीं है। 'भोगावती' का प्रयोग सार्थक है। भोगावती की सुंदर तरंग हलचल करती ऊपर उठती है पर गुरुत्वाकर्षण के कारण फिर अपनी उमड़न को शांत कर लौटती है। यौवन काल में चंचलता उत्तेजना और उल्लास भोगावती की तरह उठते हैं पर अवस्थाजन्य स्वाभाविक लज्जा पर नियंत्रण भी है अतः वे उमंगें पुनः शमित होती हैं। 'वीर भोग्या वसुन्धरा' की अर्थच्छाया भोगावती में देख सकते हैं। सरोज की देह के लिए दिव्य विशेषण का प्रयोग कर निराला ने सारी पुरानी मान्यताओं को तोड़ दिया है क्योंकि इसका प्रयोग अलौकिक पदार्थों के लिए होता है। यह निराला की यथार्थवादी दृष्टि का सुंदर उदाहरण है।

इसके बाद कवि सरोज की युवावस्था को स्वर्गीय पत्नी की स्मृति से जोड़ देते हैं। 'तन्वी' शब्द सार्थक है। इसका धातुगत अर्थ है - जो तन से पैदा हो। आगे कवि एक ओर तो सरोज की पिक बालिका से उपमित करते हैं तो दूसरी ओर शकुन्तला से दोनों का जन्म कहीं और होता है और पालन कहीं और। उपमा देने की ये विलक्षण पद्धति है।

निराला के अबतक के सौन्दर्य वर्णन में एक स्वस्थ उदात्त मांसलता मिलती थी, पर यह कविता मांसल स्पर्श से बची है।

यह कवि के कलात्मक संयम का सुपरिणाम है। निराला के सौन्दर्य-वर्णन के हिसाब से यह एक नई चीज है।

जब सरोज की शादी का सवाल पैदा होता है तब कवि फिर अपने परिवेश से टकराते हैं। वे कान्यकुब्ज कुल की वैवाहिक संबंधों की रूढ़ियों एवं कट्टरता पर व्यंग्य करते हैं—

"वे जो यमुना के से कछार
पद फटे बिवाई के, उधार
खाये के मुख ज्यों, पिये तेल
चमरौधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते घोर-गन्ध
उन चरणों को मैं यथा-अन्ध
कल घ्राण-प्राण से रहित व्यक्ति
हो पूजूँ, ऐसी नहीं शक्ति
ऐसे शिव से गिरिजा-विवाह
करने की मुझको नहीं चाह।"

ये पंक्तियाँ भी कविता की मूल संवेदना से अलग दीखती हैं। शोक और हास्य का सह-संयोजन रचना कौशल की दृष्टि से हिमाकत है जो निराला ही कर सकते थे। शोक की भाव-भूमि में गंभीरता की एकरसता खंडित करने के लिए यह प्रसंग आया है। इसमें तुलसी की तरह ही निराला ने ग्राम्य जीवन से उपमाएँ ग्रहण की हैं। 'सकेल' शब्द ठेठ अवधी ब्रज-भाषा है।

इस तरह पूरी कविता में निराला भाव के विषम धरातल पर लगातार चल रहे हैं। 'राम की शक्ति-पूजा' में जिसमें विजय नहीं विजय का संकेत है, वैसे ही इसमें प्रकाश नहीं प्रकाश का उल्लेख है। कविता आरंभ होती है प्रकाश की कल्पना से, कवि की कल्पना है कि कन्या स्वर्ग इसलिए गई है कि जब पिता असमर्थ होंगे तो उस दुर्भेद्य अंधकार में वह उनका हाथ ~~पकड़~~ पकड़कर पार ले जाएगी। कन्या स्वयं शुक्ला प्रथम है, अतएव यह श्रावण नभ का अंधकार पार करने का सपना टूट जाता है, कविता की रूप रेखा चरमरा जाती है। कहाँ तो भाग्य से लड़ने की तैयारी कहाँ ये चरम निराशा। सरोज की मृत्यु ने उनकी सारी दुनिया को तिरोहित कर दिया। जीवन के यथार्थ का क्रूर और भयानक रूप सामने आ जाता है। ज्याँ पाल सार्त्र ने कहा है कि 'मेरी कृतियाँ भूख से तड़पते बच्चे को नहीं बचा सकतीं।' निराला की कृतियाँ भी मृत्यु से पुत्री को नहीं बचा सकीं। अपने कवि-कर्म से वे कन्या को जलांजलि देते हैं। व्यंजना यह है कि नैनों में ~~तर्पण~~ तर्पण के लिए जल भी नहीं है, फिर किससे तर्पण हो? रचयिता की मुक्ति कहाँ है? रचने में ही न! तो इतनी बड़ी पीड़ा से मुक्ति तब तक नहीं मिल सकती जब तक 'सरोज-स्मृति' की रचना न हो जाती। कविता अपनी पूर्णता में सरोज-स्मृति को समर्पित है। इस प्रकार पिता और दुहिता के अन्तर्संबंधों की अर्थवत्ता में अपनी आत्मव्यथा की करुण-कथा

के द्वारा हिन्दी कविता में जो एक 'अमर' शोकगीत जो प्रस्तुत किया है वह वेदना की साँस पाकर हिन्दी भास्कर साहित्य में स्वर्गीय है

इस प्रकार कविता का संरचना कम हट जाने से ये काफी प्रभावशाली हो गई है। रामविलास शर्मा ने लिखा है — "इस कविता का अंत - इसकी परिणति जितना प्रभावशाली है, उतना अन्य किसी का नहीं, न 'तुलसीदास' न 'वन-बेला' न 'राम की शक्ति-पूजा' - कोई भी कविता प्रभावशाली अंत की दृष्टि से 'सरोज-स्मृति' का मुकाबला नहीं कर सकती। यहाँ कविता की पूर्व निश्चित तर्क संगत ढाँचे का टूटना ही इसकी सबसे बड़ी सफलता है।"